असली कला की खोज में

– सिम्मी चतुर्वेदी, कोटा
<simmy_seema2004@yahoo.com>

मुझे समाज, परिवार, स्कूल ने अकसर यह बताया कि एक लड़की होने के नाते मुझे हमेशा किसी सहारे की जरूरत पड़ेगी या किसी पर निर्भर रहना पड़ेगा। मुझे यह बताया गया कि कलाकार बनने के लिए किसी कलाकार के घर जन्म लेना पड़ता है और कला ईश्वर की देन होती है। बिना चैक या जैक के आप ईमानदारी से सफल नहीं हो सकते।

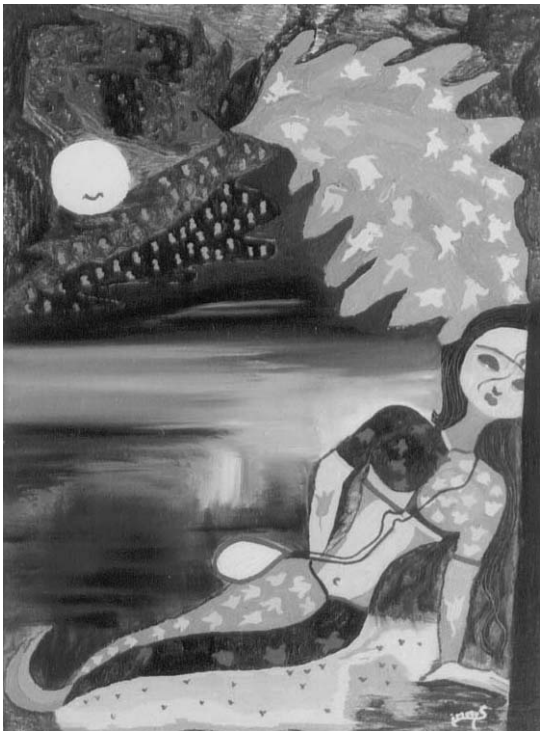

बचपन से ही मुझे स्कूल जाना पसन्द नहीं था। मैं स्कूल की दीवार फाँदकर तथा झूठ बोलकर घर भाग जाती थी। मैं कभी बने–बनाए खिलौनों से नहीं खेली। मुझे रेत में घर बनाना, सीप व पत्थर इकट्ठे करना, पेड़ से जामुन तोड़ना आदि बहुत अच्छा लगता था। जब मैंने चित्रकला को विषय के रूप में चुना, तब मैंने नहीं सोचा था कि मैं एक कलाकार बन सकती हूँ। क्योंकि स्कूल में तो कोई कला थी ही नहीं। हाँ, चित्रकला विषय जरूर था। हमारी टीचर को चित्रकला का कोई ज्ञान नहीं था।

मेरी कला सीखने की प्रक्रिया अपने आप शुरू हुई। मेरे परिवार में कोई भी व्यक्ति चित्रकारी नहीं करता है, मैंने अपने भीतर के कलाकार को खुद खोजा है। बड़ी दीदी के कहने पर मैंने सबसे पहले दीपावली और नए साल के कार्ड बनाए तथा अपने रिश्तेदारों को भेजे। सब लोगों ने मेरे काम को पसन्द किया। इससे मुझे हौसला मिला। कला में सबसे ज्यादा मैंने अपने मित्र मदन से सीखा। उसके साथ काम करते हुए मेरी समझ बनी कि एक अच्छी कलाकृति क्या होती है? धीरे–धीरे मैं अपनी पेंटिंग्स बनाने लगी और मुझे असीम आनन्द की अनुभूति होने लगी।

सन् 1999 में मैंने पहली बार सामूहिक प्रदर्शनी 'एक्सप्रेशन' नाम से कोटा, बूँदी, जयपुर, गढ़ेपान में लगाई। एक–दो प्रदर्शनी के बाद मुझमें आत्मविश्वास पैदा होने लगा।

मैंने एक साल तक एक स्कूल में चित्रकला सिखाने का काम किया। यहाँ पर मुझे अपने ढंग से काम करने की कोई आजादी नहीं थी। रोज सेब, केला, आम, फूल बनवाने पड़ते। इसमें मुझे और बच्चों को अपने मन से कोई सृजनात्मक गतिविधि करने का कोई मौका नहीं था। मैंने महसूस किया कि बच्चे अपने गुरुजनों की बातों पर विश्वास करते हैं, जिससे उनके स्वयं सोचने–समझने की शक्ति का उपयोग नहीं हो पाता। बच्चों पर अनैसर्गिक दबाव डाला जाता है। छोटा बच्चा खेलने–कूदने के बजाय किताबों में उलझा रहता है। उसे स्कूल में अमीर–गरीब, ऊँच–नीच, सुन्दर–असुन्दर, कमजोर–बहादुर आदि का अहसास कराया जाता है, जिससे वह अपने आप को हीन समझने लगता है। मुझे लगता है, आज बच्चों को उनके प्राकृतिक विकास की जरूरत है, जो उसको उसके अपनों के बीच अपनी जिज्ञासाओं के साथ बिना किसी दबाव के फलने–फूलने दिया जाए।

मैं राजस्थान के कोटा शहर में रहती हूँ, जिसके आसपास बहुत सारे आदिवासी समुदाय बसे हैं। अभी मैं राजस्थान व मध्यप्रदेश के आदिवासियों के कला वैभव पर शोध कर रही हूँ। इसके पीछे मेरा उद्देश्य अपनी आदिम कला को संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रयास करना है, जो शहरीकरण और भौतिकवाद के कारण समाप्त होने के कगार पर है। मैं गाँवों में जाकर उन आदिवासी महिलाओं के साथ उनके कला कार्यों को सीखना–समझना चाहती हूँ, जो बिना किसी स्वार्थ के गृहसज्जा एवं धार्मिक भावनाओं को लेकर कला कार्य करती हैं। जो परम्परागत रूप से माता से पुत्री को स्थानान्तरित होती रहती है और यह एक–दूसरे के सीखने की प्राकृतिक प्रक्रिया है। जाने–अनजाने में ये आदिवासी महिलाएँ एक कला–दीर्घा का निर्माण कर जाती हैं। आज जिन आदिवासियों को 'पिछड़े लोग' कहकर नकार दिया जाता है, वे लोग कला और संस्कृति की दृष्टि से बहुत विकसित हैं। मैं इन लोगों को सिखाती नहीं, बल्कि खुद उनसे बहुत सीखती हूँ।

एक बार हमारी क्लास में बच्चे बहुत शोर मचा रहे थे और सर को चिढ़ा रहे थे। सर को बहुत गुस्सा आया और बोले - ''इस क्लास का सबसे बेवकूफ लड़का कौन है? वह खड़ा हो जाए।'' थोड़ी देर तक कोई खड़ा नहीं हुआ। कुछ देर बाद मैं खड़ा हो गया। सब बच्चे मुझे पर हँसने लगे। सर ने सबको चुप कराया और बोले कि यह लड़का कम से कम यह स्वीकार तो करता है कि यह क्लास का सबसे बेवकूफ लड़का है। मैंने कहा - ''सर! ऐसी बात नहीं है, वो तो आप अकेले खड़े थे, इसलिए मुझे अच्छा नहीं लग रहा था!'' सर तिलमिलाए और मेरे गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया। इसके बाद से मैंने तय किया है कि अब सर का साथ कभी नहीं दूँगा।

- रौनक, उदयपुर

पढ़े-लिखे लोगों का शोषण नहीं होता!(?)

– विधि जैन, उदयपुर <vidhi@swaraj.org>

स्कूल का झूठ

मैं खुद को एक शहरी, पढ़ी–लिखी, सशक्त महिला समझती थी और उसके लिए मेरे पास कई प्रमाण पत्र मौजूद हैं, जो साबित कर सकते हैं कि मैं उस श्रेणी का हिस्सा हूँ, जिसका कोई शोषण नहीं कर सकता। एक झूठ, जो मैंने इस व्यवस्था से सीखा है कि अनपढ़ लोग देश पर कलंक है और शोषण व अन्धविश्वास को खत्म करने के लिए पूरे देश को पढ़ा–लिखाकर साक्षर बनाना चाहिए।

मैं आपको बताना चाहती हूँ कि मैं पढ़ी–लिखी होते हुए भी किन–किन तरह से शोषित रही हूँ और अनगिनत अन्धविश्वासों से ग्रसित हूँ। बाजारी व्यवस्था मुझ पर इतनी हावी हो चुकी थी कि मैं बिना सोचे–समझे किसी भी वस्तु को तिगुना या चौगुना पैसा देकर खरीद लेती थी। मैं जहरीले व प्लास्टिक के रैपिंग वाले पैकेट में साधारण सी वस्तु का दस गुना ज्यादा पैसा देकर खरीदती थी, जैसे – एक आलू की चिप्स का पैकेट या कोक–पेप्सी।

मेरा दूसरा शोषण आज की मेडिकल व्यवस्था ने किया। मैं अनाप–शनाप दवाइयाँ, टेस्ट, टीकाकरण की शिकार बनी। मैं और मेरे जैसे लोग डॉक्टर से यह प्रश्न पूछने में भी काँपते हैं कि वास्तव में हमारे शरीर में क्या हुआ है और इतनी सारी दवाइयों से हमारे शरीर पर क्या असर होने वाला है? अगर हमने इतने साल जीव–विज्ञान का अध्ययन किया है, तो वास्तव में हम अपने शरीर को कितना जान पाए हैं और वैकल्पिक चिकित्सा या प्राकृतिक उपचार के बारे में जानने की हमारी जिज्ञासा कहाँ गई?

मैं मानती हूँ कि मेरी शोषण की जड़ यह शिक्षा–व्यवस्था ही है। उदाहरण के लिए – यह जानकारी मुझे हर कदम पर दी गई कि किसी भी चीज की उम्र बढ़ाने के लिए उसमें बेशुमार केमिकल व पेस्टीसाइड डाले जाते हैं। पर ऐसी सबसे ज्यादा जानकारी रखने वाले 'शिक्षित' लोग ही उन केमिकल–युक्त चीजों का अन्धाधुन्ध उपभोग कर रहे हैं। मैं खुद शुद्ध व अशुद्ध अनाज, सब्जियों, फल आदि की पहचान भी नहीं कर पाती हूँ। मैं न तो अपनी वास्तविक जरूरतों को पहचान पाई और न ही मुझमें इतनी सृजनात्मकता थी कि मैं इसके अलावा जीने के कोई विकल्प ढूँढ़ पाऊँ। कुछ महिनों से मैंने अपने

कुछ दोस्तों के साथ कुछ ऐसी पैकेट–बन्द चीजों को छोड़कर नई देशी चीजों, जैसे – मक्का, हामो, ग्वारपाठा आदि के अलग–अलग व्यंजन बनाना शुरू किया है। इनसे मैंने खुद के खान–पान पर भी ज्यादा ध्यान देना शुरू किया है।

मैं अपने पढे–लिखे दोस्तों से यह संवाद शुरू करना चाहती हूँ कि हम इन आधुनिक अन्धविश्वासों से बचने के लिए क्या कर सकते हैं? क्यों पढ़े–लिखे लोग इस जाल में फँसे जा रहे हैं कि 'पैसा' और 'पद' ही सब–कुछ है और ईमानदारी से जीने का कोई अर्थ नहीं है? हम यह पहचानें कि शोषण करने वाले लोग भी ज्यादातर पढ़े–लिखे ही हैं। कोरी साक्षरता के पीछे पड़ने के बजाय हम सोचें कि अपने आपसी विश्वास और रिश्तों को कैसे बढ़ाएँ?

नया दौर

– मनोज प्रजापत, उदयपुर <dhakkan59@yahoo.com>

हाल ही में मैंने एक फिल्म देखी – नया दौर। यह फिल्म 'हाथ और मशीनों के बीच संघर्ष' पर आधारित है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे मशीनों के आ जाने से गाँव के लोग बेरोजगार हो जाते हैं और उनमें से कुछ लोगों को गाँव छोड़कर दूसरे गाँव में भी जाना पड़ता है। इस तरह मालिक और मजदूरों के बीच द्वेष की भावना पैदा हो जाती है।

इस फिल्म में एक दृश्य ने मुझे सोचने पर मजबूर किया कि जब मालिक का बेटा बाहर से पढ़ाई करके अपने पिताजी के व्यवसाय को सम्हालने के लिए आता है, तो उसे लोगों को हाथ से काम करते हुए देखकर अच्छा नहीं लगता। जल्दी काम और अधिक पैसों के लालच के कारण वह शहर से मशीनें खरीदकर लाता है। मशीनों के आते ही हाथ से काम करने वाले सारे मजदूरों को हटा दिया जाता है।

गाँव में जब मोटरगाड़ी आ जाती है, तो फिल्म के नायक सहित सभी ताँगे वाले बेरोजगार हो जाते हैं। मालिक का बेटा उन्हें चुनौती देता है कि वे अपने ताँगे को मोटरगाड़ी से आगे निकाल लें, तो वह मोटरगाड़ी सहित गाँव छोड़कर चला जाएगा। फिल्म का नायक उपाय सोचता है कि मोटरगाड़ी को ताँगे के मुकाबले में कैसे हराया जाए। वह तय करता है कि वे अपना एक अलग रास्ता बनाएँगे, जिस पर ताँगा चलेगा। रास्ता बनाने के लिए शुरूआत में सब गाँव वाले मना कर देते हैं। वह खुद अकेला इस काम में जुटता है। धीरे–धीरे सब लोग उसके साथ

घर में फर्नीचर? कभी नहीं!

–सुमी, अहमदाबाद <creativesumi@yahoo.co.in>

''क्या आप गरीब हैं? क्या आप बेरोजगार हैं? आपके घर में कोई फर्नीचर क्यों नहीं है?''

''पहला कारण है कि फर्नीचर को देखकर हमें भीड़भाड़ सी महसूस होती है, जैसे कहीं ट्रेफिक जाम हो गया हो। दूसरा कारण है कि लगभग सभी के घरों में फर्नीचर होता है, तो इसमें कुछ नयापन महसूस नहीं होता। तीसरा कारण, फर्नीचर न होने से बच्चों को खेलने के लिए काफी जगह मिल जाती है।''

''तो क्या मेहमानों को नीचे बिठाएँ?''

क्यों नहीं! भारत की सभी परम्पराएँ नीचे बैठने के पक्ष में ही हैं, फिर वो शादी–ब्याह हो या हवन हो या फिर सामूहिक भोजन। फर्नीचर घर में नहीं रखने की सोच तो हमारी तभी बन गई थी, जब से हम अपने बच्चों को कई दोस्तों व रिश्तेदारों के यहाँ ले जाते थे। हरेक के वहाँ फर्नीचर की वज़ह से हमें या तो बच्चों को टोकना पड़ता था या जबरन रोकना पड़ता था। तभी एक समझ यह बनी थी कि अगर घर में फर्नीचर होगा, तो पूरा दिन बच्चों को 'यह मत छूना, वो मत छूना, इस पर मत बैठना, उस पर मत लेटना' जैसे कई नकारात्मक आदेश थोपने पड़ेंगे।

हम (चन्द्रेश और मैं) अहमदाबाद शहर में अपने दोनों बच्चों (कुदरत और अजन्य) के साथ एक ऐसे फ्लेट में रहते हैं, जहाँ से बच्चे अकसर खेलने के लिए बाहर नहीं जा सकते हैं। एक बड़े शहर में रहते हुए भी हमने अपने जीवन में कुछ उसूल तय किए हैं। हमारी जीवनशैली शहरी जीवन से बिल्कुल हटकर है और हमने तय किया है कि हम अपने दोनों बच्चों को कभी स्कूल नहीं भेजेंगे। हमने तय किया कि हम अपने बच्चों के सीखने के लिए मौके खुद बनाएँगे और अपने घर को भी एक ऐसी सीखने की जगह के रूप में बनाएँगे, जहाँ वे खेल–कूद सके और मनचाही चीजें करते हुए सीख सके। इसीलिए हमारा निर्णय था कि हम अपने घर में किसी प्रकार का फर्नीचर और रेडिमेड सजावट का सामान नहीं रखेंगे।

हम जब भी किसी घर में गए हैं, तो देखा है कि ज्यादातर माता–पिता अपने बच्चों की शिकायत हमसे करते रहते हैं कि 'मेरा बच्चा ठीक से नहीं बैठता, मेरा बच्चा उधम मचाता है, मेरा बच्चा शैतानी करता है। तब हमें एक चीज बिल्कुल समझ में आ गई कि ज्यादातर नकारात्मक विचार बच्चों की आन्तरिक ऊर्जा को दबाते हैं और जो ऊर्जा बाहर निकलनी चाहिए, वो फिर हिंसक रूप में बाहर निकलती है।

हमने अपने घर के आँगन में बैठने के लिए ईंट, गोबर और मिट्टी का आसन बनाया है। दीवारों का पूरा इस्तेमाल किया है। एक दीवार पर पेपरमेशी से म्यूरल बनाया है और दूसरी दीवार को कबाड़ से सजाया है। एक छोटा सा कमरा है, जिसमें बच्चों के खेलने की जगह है। इसकी एक दीवार बच्चों को चित्र बनाने के लिए छोड़ी गई, वे जैसे सजाना चाहे, वैसे सजाए। ये सब हमने बहुत कम खर्च में किया है। मैंने अनुभव किया है कि रेडिमेड फर्नीचर और बनावटी सजावट के सामान से हटकर खुद अपने घर को सजाने में जीवन्तता का अहसास होता है और इससे हमारी सृजनात्मकता भी विकसित होती है।

एक बार जब हम अपने घर में एक टेबल लेकर आए थे, तो शुरूआत में तो कुदरत (हमारा 5 वर्षीय बेटा) ने कहा कि इसे कुछ दिन घर में रहने दो। यह टेबल काँच और लकड़ी से बनी थी। दो दिन तक हमारे दोनों बच्चे इस टेबल पर उछले–कूदे, उसके बाद कुदरत ने बताया कि हमें यह टेबल अब अधिक समय तक अपने घर में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि इससे हमारे खेलने के लिए पर्याप्त जगह नहीं बचती है। इसके तुरन्त बाद यह टेबल हमने अपने पड़ौसियों को दे दी। अब हमारे घर में ऐसी जगह बन गई है कि पड़ौसियों के बच्चे भी खेलने के लिए हमारे घर आते हैं।

फर्नीचर नहीं होने से घर को एक नए ढंग से सजाने का मौका मिलता है। मैं उन सब लोगों को संवाद और साथ मिलकर सीखने के लिए आमन्त्रित करती हूँ कि हम अपने घर को एक सीखने की बेहतरीन जगह के रूप में कैसे विकसित कर सकते हैं, ताकि हमारे बच्चों को स्कूल या किसी बाहरी संस्था को सुपुर्द न करना पड़े और घर को सजाने के लिए बाजारी प्रोडक्ट्स पर निर्भर नहीं होना पड़े।

हो जाते हैं और वे एक नया रास्ता बनाने में सफल होते हैं। मोटरगाड़ी और ताँगे के बीच में हुए मुकाबले में अन्ततः ताँगे की जीत होती है और मोटरगाड़ी सहित अन्य सभी मशीनों का गाँव से बहिष्कार कर दिया जाता है।

जब मैंने इस फिल्म को लेकर अपने बारे में सोचा, तो मैंने देखा कि मैं मशीनों पर कितना और किस प्रकार निर्भर हूँ? अभी मैं अपने स्तर पर कुछ काम करता हूँ, जिनमें मशीनों का उपयोग लगभग नहीं होता है और उससे मैं अपनी आजीविका चलाता हूँ। मैं अपने भैया के साथ मिनिएचर पेंटिंग करता हूँ। पहले मेरे पापा शर्बत बनाते थे, तो उनके साथ काम करते हुए मैं भी सीख गया और अब मैं भी इसे बना लेता हूँ।

अब मैं नए–नए काम सीख रहा हूँ, जैसे – जड़ी–बूटियों के बारे में जानना, परिवारों के साथ हर्बल गार्डन बनाना। मशीनी–प्रोडक्ट्स और प्लास्टिक का उपयोग बन्द करके मैं खुद कागज के बैग आदि बनाता हूँ। हाथ भी कहीं मशीनों की तरह न चलने लग जाए! यह सोचकर जब भी मैं कोई काम करता हूँ, तो उसमें नए–नए प्रयोग करता हूँ, जैसे – कोई पेंटिंग बनाता हूँ, तो उसमें नई–नई डिजाइन और नए रंगों का इस्तेमाल करता हूँ।

अलग नजरिया सुन्दरता का

– दिनेश पगारिया, उदयपुर
<dineshpagaria@yahoo.com>

बचपन से ही मुझे फोटोग्राफी और पेंटिंग में रुचि थी। धीरे – धीरे समय नहीं मिल पाने के कारण पेंटिंग छूट गई, लेकिन फिर भी मैं फोटोग्राफी के लिए समय निकाल लेता था। करीब 6 साल पहले मैंने फोटोग्राफी पर ज्यादा ध्यान देना शुरू किया। मैंने इसके लिए कहीं कोई औपचारिक कोर्स नहीं किया और न ही किसी के साथ रहकर सीखा। अपनी अन्तःप्रेरणा और जिज्ञासा के कारण मैं फोटोग्राफी से जुड़े अलग–अलग लोगों, समूहों और संस्थाओं के सम्पर्क में आया। इंटरनेशनल फोटोग्राफी कांउसिल, फेडरेशन ऑफ इंडिया फोटोग्राफी आदि संस्थाओं का सदस्य बना। जोधपुर, दिल्ली, विशाखापट्टनम में आयोजित फोटोग्राफी कार्यशालाओं में भाग लिया। बेटर फोटोग्राफी, टाइम्स जर्नल ऑफ फोटोग्राफी, एशियन फोटोग्राफी आदि कई मैगजीनें और पुस्तकें पढ़ीं। सब चीजें मैंने खुद करते–करते सीखीं। खुद ने कई नए प्रयोग किए, गलतियाँ की। मैंने अपनी गलतियों से अकसर बहुत सीखा है।

मैं ट्रेवल फोटोग्राफी करता हूँ। इसलिए कई जगहों पर घूमने और प्राकृतिक दृश्यों और चीजों को गहराई से देखने–समझने का मौका मिलता है। फोटोग्राफी के दौरान मुझे राजस्थान के बहुत सारे मेले – पुष्कर, नागौर, सीतामाता आदि के अलावा कुम्भ और उज्जैन के मेले भी देखने को मिले। वहाँ की प्रकृति, संस्कृति, रहन–सहन, दैनिक जीवनचर्या आदि के बारे में सीखा।

फोटोग्राफी मेरे लिए एक व्यवसाय नहीं है, बल्कि मेरी अभिव्यक्ति और सृजन का एक ऐसा माध्यम है, जिससे मैंने दुनिया को विभिन्न नजरियों से देखना शुरू किया। मैं कुदरती व्यवस्था में बिना कोई दखल दिए चुपचाप फोटो खींचता हूँ और अपनी अनुभूतियों को छायाचित्रों की भाषा में व्यक्त करता हूँ। मैंने महसूस किया है कि प्रकृति में मौजूद हर चीज और हर प्राणी अपने आप में बेहद खूबसूरत है, लेकिन उस खूबसूरती को पहचानने के लिए हमें वो दृष्टिकोण विकसित करने की जरूरत होती है। हर चीज एक खास एंगल से सुन्दर लगती है और मैं उस एंगल को ढूँढ़ने की कोशिश करता हूँ।

फोटोग्राफी करते हुए मेरी जीवन–दृष्टि में कई बदलाव आए हैं। इससे मेरा मन तो शान्त रहता ही है, साथ ही मेरा स्वभाव और चीजों के प्रति नजरिया भी सकारात्मक बना रहता है। बनी–बनाई धारणाओं से हटकर जीवन को अलग ढंग से समझने का अवसर मिलता है। मैं कई मैगजीनों के लिए भी फोटोग्राफी करता हूँ। मैंने अपने अनुभवों से पाया है कि अपनी रुचि के काम को सीखने के लिए बाहरी दबाव, प्रशिक्षण और औपचारिक कोर्स जैसी कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ यह जरूरी है कि हम अपनी वास्तविक रुचि को पहचानें।

फोटोग्राफी मैंने करते–करते सीखी है। और कोई भी सीख सकता है। धीरे–धीरे अपने आप चीजें अपने आप समझ में आने लगती है इस दौरान अगर आप को कोई समस्या हो तो आप मुझसे पूछ सकतें हैं। फोटोग्राफी सीखने के इच्छुक साथी मुझसे सम्पर्क कर सकते हैं।

युवा कलाकारो के लिए कुछ सुझाव :-

१ कम्पोजीशन :- इसमें ध्यान रखें कि फोटो को फ्रेम कैसे करना है? सेन्टर आफ इन्ट्रेस्ट क्या है? फोटो में क्या दिखाना चाहते हैं, ताकि देखने वालो का ध्यान फोटो से बाहर न जाए?

२ फोकस :- शुरू में ऑटो फोकस पर ही शूट करें। बाद में आप मेन्यूअल फोकस कर सकते हैं। जो कुछ भी आप व्यू फाइंडर से देखते हैं, वो बिल्कुल साफ होना चाहिए। यदि धुंधला है, तो इसका मतलब फोकस गड़बड़ है।

३. लाइट :- लाइट कैसी है? लाल, नीली, तेज, कम? किस दिशा से आ रही है? दिन में लाइट कई बार रंग बदलती है। जैसे - सुबह की लाइट, दोपहर की लाइट, शाम की लाइट, बादलों के बीच से आने वाली लाइट, पेड़ों के छाँव की लाइट आदि। सूरज निकलने के दो घण्टे बाद तक और शाम को सूर्यास्त से दो घण्टे पहले की लाइट फोटोग्राफी के लिए बहुत अच्छी मानी जाती है। इन्हें गोल्डन ऑवर्स कहते हैं। लाइट का कैसा इस्तेमाल हो, यह आपकी कल्पनाशक्ति व सृजनात्मकता पर निर्भर करता है।

४. कमरे के अन्दर फोटो खींचते समय ध्यान रखें कि ज्यादा से ज्यादा प्राकृतिक, सूर्य की लाइट का इस्तेमाल करें। क्योंकि अगर ट्यूबलाइट में शूट करते हैं, तो फोटो थोड़ा बैंगनी रंग सा हो जाता है। और अगर टंगसटन लाइट में शूट करते हैं, तो फोटो में पीला प्रभाव आता है। इस स्थिति में आप नीला फिल्टर इस्तेमाल कर सकते हैं, ताकि फोटो साफ आए।

बच्चे मेरे गुनाहों को माफ करें!

– रामावतार सिंह, अजमेर
<ramawtarsingh@yahoo.co.in>

लगभग अढ़ाई वर्ष तक मैंने एक अनौपचारिक रात्रिपाठशाला में बच्चों को पढ़ाने का काम किया। जो बच्चे अलग–अलग तरह के हुनर और काम–धन्धों में संलग्न थे, मैं उन्हें बताता था कि उनके माँ–बाप स्कूल नहीं जाकर पाप के भागीदार रहे हैं, इसलिए उनके सामने यह मौका है कि वे ऐसी भूल करके देश पर कलंक ना बनें! 'शिक्षा' के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए मैंने मास्टरी छोड़कर शिक्षकों का प्रशिक्षक बनकर काम किया। लगभग साढ़े चार वर्ष तक मैंने वे सभी चीजें शिक्षकों और बच्चों पर थोपने का काम किया, जिनका निर्णय हम चन्द लोग ही करते थे। आज मुझे महसूस होता है कि मैंने बच्चों पर गुनाह किए हैं। इन गुनाहों के बावजूद मैं समाज और अपने साथियों की दृष्टि में एक 'अच्छा' शिक्षक माना जाता था। मैं अपने उन पापों का खुलासा करते हुए यह दरख्वास्त करता हूँ कि बच्चे मुझे माफ कर दें :–

1. मैंने अपनी स्कूल के बच्चों के बीच कई प्रतियोगिताएँ करवाईं। रात्रिशालाओं का समन्वयक बनने के बाद तो मैंने अलग–अलग स्कूलों के बीच भी प्रतियोगिताएँ करवाई। प्रतियोगिता में जीतने वाले बच्चों को श्रेष्ठ घोषित करते हुए मैं उन्हें अपने स्तर पर इनाम वितरित करता था और हारने वाले बच्चों को मेरी दुत्कार और हीन–दृष्टि का शिकार होना पड़ता था। हारने और जीतने वाले बच्चों के बीच दुश्मनी की भावना पैदा करने में मेरा बहुत योगदान रहा।

2. मैं बच्चों को अलग–अलग कक्षाओं के अतिरिक्त एक ही कक्षा के बच्चों को भी अलग–अलग वर्गों में बाँटता था। ये वर्ग मैं बच्चों के 'शैक्षिक स्तर' के आधार पर बनाता था। वर्ग–शिक्षण (ग्रुप–टीचिंग) के नाम पर बच्चों में ऊँच–नीच या भेदभाव के बीज बोना और तीसरे वर्ग के बच्चों पर 'मन्दबुद्धि' का ठप्पा लगाना मेरे अधिकार में होता था। छः सालों में मैंने सैंकड़ों बच्चों पर 'नालायक' की छाप लगाई। बच्चों की विविधताएँ मेरे लिए समस्याएँ थी, इसलिए मैं सबको एकरूप बनाकर खुद की इच्छानुसार चलाने की कोशिश करता था।

3. मैंने अपने शिक्षण काल के दौरान हमेशा हिन्दी भाषा को अपनाने और अपनी स्थानीय बोली से परहेज करने पर जोर दिया। मेरी कोशिश होती थी कि बच्चे स्कूल में सिर्फ हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करें। मारवाड़ी बोली बोलने वाले बच्चों के बजाय मेरा ध्यान उन बच्चों पर ज्यादा होता था, जो हिन्दी के 'आदर्श' शब्दों को मेरे इशारे पर तुरन्त उगल सकते थे।

4. मैंने हमेशा पाठ्यपुस्तकों में दी हुई बातों पर विश्वास किया और बच्चों को भी वही मानने पर मजबूर किया। उदाहरण के लिए जानवर चराने वाले और गोबर उठाने वाले बच्चों को मैंने 'अच्छे' साबुन से नहाने के लिए प्रोत्साहित किया। जबकि उनके और अब मेरे भी अनुभव यह बताते हैं कि गोबर त्वचा के लिए बहुत फायदेमन्द हैं (आजकल कई लोग गोबर–युक्त एवं गोमूत्र–युक्त साबुन भी बना रहे हैं)। मैंने इन स्कूली बच्चों के छोटे भाई–बहनों को पोलियो की दवा पिलाने और टीके लगवाने के लिए भी दबाव बनाया। क्योंकि टीकाकरण हमारे अनौपचारिक पाठ्यक्रम का हिस्सा था। जबकि लोगों (जिनमें से कई लोग मेरे मित्र हैं) ने अपने अनुभवों से यह साबित किया है कि टीकाकरण और पोलियो की दवा बच्चे को किसी भी बीमारी से बचाती नहीं, बल्कि उन पर घातक दुष्प्रभाव छोड़ती है। इस प्रकार मैंने बच्चों को अपने स्वास्थ्य के लिए डॉक्टरों पर निर्भर बनाने के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य को खतरे में डालने का काम किया।

5. बच्चों को लोकतान्त्रिक व्यवस्था के बारे में जानकारियाँ देने के लिए हमने बालसंसद (बच्चों की संसद) का गठन किया, उनके चुनाव करवाए, ताकि आगे जाकर वे भी वर्तमान राजनेताओं का अनुकरण कर सकें और इस व्यवस्था को पोषित कर सकें। इस संसद का मकसद था कि बच्चों के हाथ में 'पॉवर' दिया जाए, ताकि सभी रात्रिशालाओं को वे अपनी इच्छानुसार चला सकें। लेकिन इन बालसांसदों के साथ उनके सचिव भी नियुक्त किए जाते थे (मैं शिक्षा मंत्री का सचिव हुआ करता था!), जो बच्चों को 'कठपुतली' की तरह चला सके और उन पर अपनी इच्छाओं को थोप सकें। मैंने 'शिक्षा विभाग' को हम बड़ों द्वारा निर्धारित ढाँचे के अनुरूप ही चलाया, जिसमें 'नाम' के लिए बाल शिक्षा मंत्री की सहमति ले लिया करता था। मैंने बच्चों को अपनी असली क्षमता पहचानने में मदद करने के बजाय उन्हें तथाकथित आर्थिक एवं राजनीतिक पॉवर का लालच दिखाया।

अपने इन गुनाहों को मैं विनम्रतापूर्वक कबूल करता हूँ, ताकि इन पापों का प्रायश्चित हो सके। ये स्वीकारोक्तियाँ मेरे लिए आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया हैं, जिसके माध्यम से मैं यह समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि बच्चों के साथ किए गए मेरे कामों से उनके जीवन पर क्या असर पड़ा है? अब मैं सिखाने (थोपने), की मानसिकता से मुक्त होकर खुद सीखने का निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ, जो मैं अपने शिक्षकीय जीवन में कभी नहीं कर पाया। यह प्रक्रिया शायद उन बच्चों को भी भ्रम से निकलने में मदद कर सकेगी, जो मेरे द्वारा थोपी हुई चीजों को चुपचाप मानते हुए अपनी असली क्षमताओं को नहीं खोज पाए। मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी असफलता के लिए बच्चों को जिम्मेदार ठहराना बिल्कुल गलत है, बल्कि शिक्षक होने के नाते मैं खुद उन तमाम मिथ्या–आरोपों का जिम्मेदार हूँ।

मेरा विचार है कि ऐसे कुछ अनुभवों को संकलित कर एक पुस्तिका प्रकाशित की जाए। आप भी अपने शिक्षकीय जीवन के पाप लिखकर भेजेंगे, तो इस संवाद को आगे बढ़ाया जा सकेगा।

'स्वपथगामी' की दृष्टि से ''मशीनीकरण से मुक्त होने के लिए आप अपने स्तर पर क्या प्रयास कर रहे हैं?'' के सन्दर्भ में कुछ लिखकर भेज रही हूँ।

मशीनें किस कदर हमें निर्भर बना देती हैं और कोई भी नया मशीनी उत्पाद हमारे जीवन में अपनी पैठ बना कैसे एक ''आवश्यकता'' बन जाता है ... इसका अनुभव, अहसास हमें था ही। इसीलिए जब सूचना क्रान्ति, इंटरनेट और मोबाइल फोन का चारों ओर डंके की चोट प्रचार-प्रसार हो रहा था; तब भी हम अडिग थे कि यथासम्भव इंटरनेट व मोबाइल फोन के इस्तेमाल से परहेज रखेंगे।

हमारे लिए यह विशेष चुनौती थी, क्योंकि हम मीडिया से सम्बन्धित कार्यों - लेखन, प्रकाशन, साहित्य वितरण आदि से ही जुड़े हुए हैं। हम पर भी निरन्तर दबाव पड़े - 'अपना ई-मेल एड्रेस बताइए', 'मोबाइल नम्बर दो', 'आपकी वेबसाइट क्या है?', 'अब तो आप कम्प्यूटर/मोबाइल खरीद ही लीजिए' ... आदि निरन्तर सुनने को मिलता रहा। पर न तो घर में कम्प्यूटर का प्रवेश हुआ, न ही मोबाइल फोन का। हाँ, अख़बार में भेजने के लिए लेख बाहर से जरूर टाइप करवाए जाते रहे। फिर अंग्रेजी के पत्र-पत्रिकाओं ने साफ घोषित कर दिया कि लेख ई-मेल के जरिए भेजें, तभी स्वीकृत हो सकेंगे।

ऐसे में हम क्या करते! फिर जहाँ बाहर से टाइपिंग-प्रिंटिंग का काम कराते थे, वहीं से कुछ लेख ई-मेल से भेजने शुरू किए। पर अधिकांश संवाद पत्रों के माध्यम से जारी रहा। जानकारी या तथ्यों के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तक-पुस्तिकाएँ हम सदा से लेते ही रहे हैं। फिर मात्र सूचना ही तो सब-कुछ नहीं होती। समझना और महसूस करना भी तो महत्त्वपूर्ण है।

कुछ और भी है इंटरनेट और मोबाइल फोन से परहेज का कारण। हम तीनों (मम्मी-पापा और मैं) को ही जब भी कभी कम्प्यूटर के आगे बैठकर काम करना पड़ा, हमने कम्फॅर्टेबल महसूस नहीं किया। मैंने यह भी महसूस किया है कि ये दोनों यन्त्र उसी वैश्वीकरण, उसी जल्दबाज आधुनिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपने आप में कई भेद-भावों और यान्त्रिकता की सूत्रधार हैं। मैं नहीं जानती कि इस अहसास का आधार कितना ठोस है, पर मन यही महसूस करता है।

मैं फ्रिज का विकल्प भी ढूँढ़ने की इच्छुक हूँ। दरअसल, घर में स्थिति कुछ यूँ है - ग्राउण्ड फ्लोर का डिब्बेनुमा मकान। खाद्य पदार्थों को चूहों, कीटों से बचाना एक चुनौती। हवा-प्रकाश घर में पर्याप्त नहीं आता। घर में आने-जाने वालों के लिए भी कुछ भोजन रखा रहता है। फल-सब्जियाँ काफी मात्रा में आते हैं। ओजोन परत की दृष्टि से फ्रिज खतरनाक हो सकता है, इसलिए हम इस दिशा में सोच रहे हैं।

- रेशमा भारती, सी-२७, रक्षा कुंज, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

आगामी कार्यक्रम

कबाड़ से जुगाड़

कबाड़ से जुगाड़ की व्यवस्था तो प्रकृति में शुरू से ही चली आ रही है। प्राकृतिक रूप से पैदा हुए हर कबाड़ का इस्तेमाल प्रकृति अपने आपको पोषित करने और अपने आपको सुन्दर बनाने के लिए करती आ रही है। इसी सोच व सृजनात्मकता को बताने और उसे नए आयाम देने के लिए *कर्ममार्ग*, फरीदाबाद में 16–19 दिसम्बर को चार दिवसीय जुगाड़ियों की मुलाकात हो रही है। इसमें हम प्रयास करेंगे कि :–

– कबाड़ के क्या–क्या कलात्मक उपयोग हो सकते हैं? जैसे– कठपुतली, वाद्ययन्त्र, घरेलू उपयोग की चीजें।

– अपने आस–पास के वातावरण को प्रदूषण–मुक्त कैसे करें और कचरे के सदुपयोग करने वाले लोगों को पहचानकर उन्हें कैसे प्रोत्साहित करें?

– शहरी जीवन में कचरा पात्र की संस्कृति को तोड़ने का प्रयास, जो मोहल्ले को तो साफ रखती है, लेकिन पूरे शहर की बेवकूफी का मलबा गॉवों में फेलाती है। कबाड़ से जुगाड़ की इस कार्यशाला में जुगाड़ी स्वपथगामियों का स्वागत है। सम्पर्क करें :–

शिल्पा जैन <shilpa@swaraj.org>
फोन : 0294–2451303

तन-मन-वन-श्रम-उत्सव

मुम्बई के निकट स्थित वनवाड़ी में दिनांक 6–10 जनवरी को वन–श्रम–उत्सव का आयोजन किया जा रहा है। इस उत्सव के दौरान हम जंगल में रहेंगे और मुख्यतः तीन काम साथ मिलकर करेंगे और सीखेंगे :– मिट्टी का घर बनाना, बहते पानी को संग्रहित करने के लिए एक या दो छोटे बॉध बनाना, ऑर्गेनिक सब्जियों का गार्डन तैयार करना। उत्सव में किया जाने वाला सारा काम सामूहिक एवं पर्यावरणीय हित के लिए होगा, यह किसी व्यक्तिगत या व्यावसायिक हित के लिए नहीं होगा।
सम्पर्क करें :– भरत मंसाटा <bharatmansata@yahoo.com>,
फोनः 09224137412 या 033–22296551

स्वपथगामियों द्वारा शुरू की गई यह पत्रिका विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की कोशिश है, जिसके माध्यम से हम अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं। पत्रिका में जिन नए अवसरों का उल्लेख किया गया है और जिन लोगों के लेख प्रकाशित किए गए हैं, आप उनके बारे में विस्तृत जानकारी के लिए उनसे सीधा सम्पर्क कर सकते हैं। अपने स्तर पर उनके साथ मिलकर सीख सकते हैं। हम उन सभी लोगों को आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। हम उन लोगों को भी आमन्त्रित करते हैं, जो इस पत्रिका के सम्पादन में सहयोग करना चाहते हैं।

आमन्त्रण

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–

रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>
अनीश सिंह <anish.manzil@rediffmail.com>
c/o शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राजस्थान) फोन – 0294–2451303